International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 20-06-2023, Accepted: 07-07-2023, Published: 22-07-2023
Volume 5, Issue 2, 2023, Page No. 17-19

मुक्तिबोध का समीक्षा संसार और एक साहित्यिक की डायरी

रामलखन पाल
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बी.एम. रुइया गर्ल्स कॉलेज, मुंबई, महाराष्ट्र, भारत

सारांश
समीक्षक साहित्य का सजग सहृदय होता है अर्थात जिसमें रचना और समीक्षा के प्रति समान भाव हो। एक ओर वह कवि की रसात्मकता का आस्वादन करता है। दूसरी ओर वह अपनी सार्थक समीक्षा के माध्यम से साहित्य की घटनाओं का विवेचन–विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वह न सिर्फ त्रिकालदर्शी होता है बल्कि द्रष्टा, ऋषि और कवि भी होता है अर्थात् वह एक साथ भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों पर अपनी सम्यक दृष्टि रखता है। वह भूत का सम्यक द्रष्टा, वर्तमान का ऋषि और भविष्य का कवि होता है। भारतीय वाङ्मय में ऐसे द्रष्टा, ऋषि और कवि की संख्या बहुत अधिक नहीं है। इस परंपरा की शुरुआत आचार्य भरत से होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध आचार्य भरत की परंपरा के महत्वपूर्ण समीक्षक हैं। हिंदी की समीक्षा परंपरा में मुक्तिबोध एक ऐसे समीक्षक हैं जिनमें द्रष्टा, ऋषि और कवि तीनों का समन्वय है। द्रष्टा के रूप में भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म और दर्शन की गहरी समझ रखते हैं। उनकी समीक्षा में इनका गहन विवेचन–विश्लेषण मिलता है। उन्होंने संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन आदि के विषय में मौलिक मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। ऋषि के रूप में मुक्तिबोध ने अपनी समीक्षा को साहित्यिक वादों–प्रतिवादों एवं खेमेबाजी से मुक्त रखा और समीक्षा को रचना–प्रक्रिया की समानांतर प्रक्रिया के रूप में विकसित किया। उन्होंने सैद्धांतिक समीक्षा, व्यावहारिक समीक्षा, रचना–प्रक्रिया आदि से जुड़े समीक्षा के सभी पक्षों पर ऋषि के समान विचार किया। कवि के रूप में मुक्तिबोध रचना और आलोचना को एक–दूसरे का पूरक मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार समीक्षा दृष्टि के बिना कवि–कर्म अधूरा है। वे कविता को एक व्यक्तिगत–मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया न मानकर सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते हैं क्योंकि कवि अपनी कविता में अपने मनोभावों के साथ जीवन–मूल्य भी अभिव्यक्त करता है। जीवन–मूल्य व्यक्तिगत न होकर समाज के होते हैं। समीक्षक में भी जीवन–मूल्य अनिवार्य है। हिंदी साहित्य की समीक्षा परंपरा में मुक्तिबोध की समीक्षा–कृति 'एक साहित्यिक की डायरी' में उपर्युक्त समीक्षा के सभी प्रतिमान दृष्टिगोचर होते हैं।

मूल शब्दः समीक्षा संसार, ऋषि, रचना–प्रक्रिया, भारतीय संस्कृति

आधुनिक हिंदी साहित्य में मुक्तिबोध बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार हैं। सन 1935 से लेकर सन 1964 तक की कालावधि तक विस्तृत मुक्तिबोध के सृजन–जगत– कविता, कहानियाँ, उपन्यास, समीक्षा–ग्रंथ, डायरियाँ एवं उनके पत्रों को उनके मित्र एवं साहित्यकार नेमिचंद्र जैन ने मुक्तिबोध के बड़े बेटे रमेश मुक्तिबोध की सहायता से छह खंडों में संकलित एवं संपादित किया है। दरअसल मुक्तिबोध कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार के साथ–साथ एक सशक्त समीक्षक और विचारक भी थे। उन्होंने अपनी सैद्धांतिक समीक्षा, रचना प्रक्रिया, नयी कविता और व्यावहारिक समीक्षा आदि में काव्य के स्वरूप, काव्य के तत्व, काव्य की आत्मा, काव्य–हेतु, प्रेरणा, काव्य–प्रयोजन, कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता या पक्षधरता, काव्य कलाः एक सांस्कृतिक प्रक्रिया, सौंदर्यानुभव और जीवनानुभव, वस्तु एवं रूप आदि पर अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं। उनकी समीक्षा दृष्टि 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष', 'नए साहित्य का सौंदर्य शास्त्र', 'एक साहित्यिक की डायरी', 'कामायनीः एक पुनर्विचार', के साथ–साथ 'समाज और साहित्य', 'साहित्य के दृष्टिकोण', 'सामाजिक विकास और साहित्य', 'जनता का साहित्य किसे कहते हैं', 'प्रगतिशीलता और मानव सत्य', 'नवीन समीक्षा का आधार', 'मार्क्सवादी साहित्य का सौंदर्य पक्ष', 'साहित्य में जीवन की पुनर्रचना', 'मध्ययुगीन भक्ति–आंदोलन का एक पहलू', 'काव्यः एक सांस्कृतिक प्रक्रिया', 'समीक्षा की समीक्षा', 'आत्मबद्ध आलोचना के खतरे', 'समीक्षा की समस्याएँ, 'वस्तु'– एक, दो, तीन, चार, 'आत्मवक्तव्य'– एक, दो, तीन, 'रचना प्रक्रिया' आदि निबंधों में देखी जा सकती है।

नयी कविता के महत्त्वपूर्ण कवि–आलोचकों में मुक्तिबोध का नाम अग्रणी है। आलोचना–सिद्धांतों का इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि रचनाकार आलोचक ही सबसे आगे रहे हैं। ये रचनाकार आलोचक नयी प्रवृत्तियों, विचारधाराओं, दायित्वपूर्ण तरीके से साहित्य का परीक्षण–मूल्याकन और विश्लेषण करने, प्रचलित मान–मूल्यों के खिलाफ, साहित्य को जीवनभूमि से जोड़ने के लिए समीक्षा का मार्ग चुनते रहे हैं। हिंदी साहित्य में मुक्तिबोध इसी कोटि के कवि–आलोचक रहे हैं। मुक्तिबोध के इसी कवि–आलोचक व्यक्तित्व को सेवाराम त्रिपाठी की यह टिप्पणी परिपुष्ट करती है– "मुक्तिबोध का व्यक्तित्व मूलतः एक कवि का है लेकिन उसकी छाया में वे कथाकार, आलोचक और इतिहास लेखक भी रहे हैं। दोनों व्यक्तित्वों की टकराहट में कवि का रूप ही विजयी होता रहा है, इसलिए उनका मूल चरित्र कवि का है। ऐसा कवि जिसे समीक्षा और कथाकार परिपुष्ट करते हैं। जहाँ कथाकार मन की गहराइयों को तथा वस्तुपरक संबंधों को द्वंद्वात्मक स्वरूप प्रदान करता है वहीं उनका आलोचक उनके वस्तु–तत्व और आत्म–तत्व की बारीकियाँ, उनके संवेदनात्मक संबंध, परंपरागत जटिलताएँ और समकालीन संघर्षों की वैज्ञानिक पहचान प्रदान करता है ताकि उनका कवि मानस रोमानियत से मुक्त हो सके। अधिक से अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक हो सके।"[01]

प्रस्तावना

मुक्तिबोध हिंदी साहित्य के पहले ऐसे समीक्षक हैं जिनका समीक्षा–कर्म उनकी रचनाधर्मिता का विस्तार है। उन्होंने अपने युग सत्य को अपनी कविताओं में, कविताओं की रचना–प्रक्रिया और अर्थ–प्रक्रिया की अभिव्यक्ति बड़ी ही प्रखरता से अपनी समीक्षा में किया है। अशोक चक्रधर ने अपनी कृति 'मुक्तिबोध की समीक्षा' के प्राक्कथन में इसी तथ्य पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि, "कविता में अपने युग का इतिहास रचने वाले कवि रहे हैं– गजानन माधव मुक्तिबोध। उन्होंने युग के अंतर्विरोधों को स्वयं जिया, और रचनाधर्मिता के स्तर पर उनकी एक पहचान बनाई।

विडंबना यही रही कि युगीन अन्तर्विरोधों की साफ़ और बेलाग समझ रखने वाले इस रचनाकार को प्रायः समझा नहीं गया। समझा न गया होना भी इतना अहितकर न होता जितना अहितकर हो गया उनके बारे में गैरवस्तुवादी और आधारहीन निष्कर्ष देना।

मुक्तिबोध नई कविता आंदोलन से अभिन्न रूप से जुड़े रहे, किन्तु कुछ भिन्नताएँ रखते हुए। इस आंदोलन के वे इकलौते कवि थे जिसने अपने युग की काव्यधारा के आत्मसंघर्ष का बहुत बारीक विश्लेषण किया। अपनी कविता को समझने–समझाने के सारे सूत्र प्रदान किए, फिर भी 'जटिल', 'दुरूह' और समझ में न आने वाले' कवि ठहराए गए।"[02] दरअसल मुक्तिबोध का समीक्षा–कर्म उनकी रचनाधर्मिता को समझने का सबसे महत्त्वपूर्ण औजार है। मुक्तिबोध की सैद्धांतिक आलोचना की प्रमुख कृतियों में–'एक साहित्यिक की डायरी', 'कामायनीः एक पुनर्विचार', नयी कविता का आत्मसंघर्ष और अन्य निबंध' तथा 'नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' आदि महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त 'मुक्तिबोध रचनावली' के चौथे और पाँचवें खंड में सैद्धांतिक समीक्षा के और भी रूप मिलते हैं।

विषय विस्तार

मुक्तिबोध की समीक्षात्मक कृतियों में 'एक साहित्यिक की डायरी' मुक्तिबोध के समीक्षा संसार की सबसे महत्वपूर्ण कृति है। इस कृति का प्रस्तुत पाठ 1957, 58 और 60 में 'वसुधा' (जबलपुर) मासिक के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुए। मुक्तिबोध की यह कृति वर्तमान की जटिल जीवन–स्थितियों में सृजनरत साहित्यकार के अनुभूत जीवन–सत्य और यथार्थ बोध की बेलाग अभिव्यक्ति है। इसमें रचनाकार की मूलभूत ईमानदारी की खरी–खरी अभिव्यक्ति भी मिलती है। डॉ. नामवर सिंह इस कृति की महत्ता को रेखांकित करते हुए यह टिप्पणी करते हैं– "कुछ लोग दुनिया से बहस करते हैं तो कुछ सिर्फ अपने से, किंतु कुछ थोड़े–से लोग ऐसे भी होते हैं जो दुनिया से बहस करने की प्रक्रिया में अपने आप से भी बहस चालू रखते हैं। मुक्तिबोध ऐसे ही थोड़े से लोगों में थे और उनकी 'एक साहित्यिक की डायरी' ऐसी ही जीवंत बहस का सर्जनात्मक दस्तावेज है जिसमें भाग लेने का लोभ संवरण करना कठिन है। अपने आप से या किसी दूसरे से बात करते हुए मुक्तिबोध पाठक को कुछ इस प्रकार उस वार्तालाप का साझीदार बना लेते कि निःसंग रहना कठिन हो जाता है। यह अपनापा संक्रामक है 'स्वयं से अस्वयं होना है। 'प्लेटों के डायलाग्स' को छोड़कर मुझे याद नहीं कि मैंने इस तरह कहीं हिस्सा लेने की विवशता का सुखद अनुभव किया हो। लगातार प्रहार करते हुए भी आत्मीयता का वैसा ही सम्मोहन और वैसा ही दुर्निवार निमंत्रण विचार प्रक्रिया में स्वतः भाग लेने का। दूसरे से प्रश्न करने के साथ–साथ अपने आप पर भी उस प्रश्न का वैसा ही वार और इस प्रकार विचार की गति के साथ अपने–आपको स्तर–स्तर खोलते जाना। न कहीं कोई छिपाव न कोई दुराव। सतत आत्म–सजगता के बीच आत्मा–विडंबना का निरंतर निर्मम बोध। यह पारदर्शी ईमानदारी ही है, जो मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' को अनूठा आकर्षण प्रदान करती है, जिसे लेखक ने 'सुकुमार ज्वालाग्राही जादुई शक्ति' कहा है। मस्तिष्क की हर हरकत साफ देखते हैं, जैसे शीशे के अंदर पारे की लकीर हो! ईमानदारी इस हद तक कि युक्तियों में स्वयं पकड़ लिये जाने को भी सहर्ष प्रस्तुत और फिर निरस्त्र कर देनेवाला खुलापन। ऐसा खुलापन जिसमें खोने के लिए कुछ भी न हो, सिवा किसी कमी के और पाने के लिए सबकुछ हो, जैसे आत्म–प्रत्यय।"[03]

इस कृति का सबसे महत्वपूर्ण पाठ 'तीसरा क्षण' है। यह मुक्तिबोध की साहित्यिक मान्यताओं का केंद्रीय तत्व है। इसे हम उनके सृजन कर्म की मूल स्थापना भी कह सकते हैं। इसी पाठ के द्वारा हम मुक्तिबोध की सृजन–प्रक्रिया, अर्थ–प्रक्रिया, सौंदर्यानुभूति, फैंटेसी–शिल्प, भाषा–प्रयोग आदि स्थापनाओं को समझ सकते हैं। इसी पाठ के माध्यम से मुक्तिबोध ने पहली बार काव्य की रचना–प्रक्रिया और अर्थ–प्रकिया का विवेचन–विश्लेषण किया है। मुक्तिबोध का मानना है कि रचना–प्रक्रिया और अर्थ–प्रकिया दोनों ही एक दूसरे में इस प्रकार अंतर्निहित हैं कि दोनों को एक दूसरे से अलगाना अत्यंत दुष्कर है। एक को समझने के लिए दूसरे से गुज़रना ही पड़ता है। इसी गुजरने की प्रक्रिया में रचनाकार का ज्ञानात्मक आधार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'तीसरा क्षण' मुक्तिबोध की रचना–प्रक्रिया संबंधी स्थापना का आधार है। मुक्तिबोध ने प्रस्तुत पाठ में अपनी रचना–प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कला के तीनों क्षणों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं– "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव–क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते–दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैण्टैसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैण्टैसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैण्टैसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। शब्द–बद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैण्टैसी अनवरत रूप से विकसित–परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह फैण्टैसी अपने मूल रूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है। जिस फैण्टैसी को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है। वह फैण्टैसी अपने मूल रूप से इतनी अधिक दूर चली जाती है कि यह कहना कठिन है कि फैण्टैसी का यह नया रूप अपने मूल रूप की प्रतिकृति है। फैण्टैसी को शब्द–बद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो–जो सृजन होता है– जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है– वही कला का तीसरा और अन्तिम क्षण है।"[04] 'एक साहित्यिक की डायरी' के इस पाठ में मुक्तिबोध ने केशव एवं स्वयं के द्वारा कला के तीनों क्षणों की साहित्यिक स्थापना को प्रस्तुत किया है। इसी के साथ उन्होंने 'वस्तु एवं रूप', 'सब्जेक्ट और ऑब्जेक्ट' तथा सौंदर्यानुभूति संबंधी अपनी मान्यताओं को भी साझा किया है।

डायरी में 'एक लंबी कविता का अंत' नामक दूसरे पाठ में मुक्तिबोध ने अपने काव्य–द्वंद्व को अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। इस पाठ में उन्होंने अपनी कविताओं के प्रदीर्घीकरण को बड़े ही साफगोयी से व्यक्त किया है। उनका मानना है कि, " यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है, वह भी ऐसा ही गतिशील है, और उसके तत्व भी परस्पर गुंफित हैं। यही कारण है कि मैं छोटी कविताएँ लिख नहीं पाता और जो छोटी होती हैं वे वस्तुतः है छोटी न होकर अधूरी होती हैं। (मैं अपनी बात कह रहा हूँ) और इस प्रकार की न मालूम कितनी कविताएँ मैं अधूरी लिखकर छोड़ दी है। इन्हें खत्म करने की कला मुझे नहीं आती यही मेरी ट्रैजेडी है।"[05] अनुभवजन्य छोटी कविताओं में अनुभव तो होता है लेकिन संदर्भहीन और परिप्रेक्ष्यहीन, जबकि मुक्तिबोध की कोशिश अनुभव को उसके संदर्भ और परिप्रेक्ष्य में, उसकी पूरी संश्लिष्टता और गतिशीलता में व्यक्त करना है। वे अपनी कविता में बुनियादी प्रश्नों की ऐतिहासिक भूमिका और व्याख्या स्पष्ट करना चाहते हैं। शायद इसीलिए–

नहीं होती, कहीं भी ख़त्म कविता
नहीं होती,
कि वह आवेग–त्वरित कालयात्री है
परम स्वाधीन है,

डायरी में 'डबरे पर सूरज का बिंब' और 'हाशिए' पर कुछ नोट्स' पाठ में मुक्तिबोध ने समीक्षा–कर्म की विसंगतियों और जटिलताओं

के साथ–साथ उसके सकारात्मक–नकारात्मक गुण–दोषों को निर्ममता से रेखांकित करते हुए समीक्षकों के आत्मालोचन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि, "एक सच्चा लेखक जानता है कि वह कहाँ कमज़ोर है कि उसने कहाँ सच्चाई से जी चुराया है, कि उसने कहाँ लीपा–पोती कर डाली है, कि उसने कहाँ उलझा–चढ़ा दिया है, कि वस्तुतः उसे कहना क्या था और कह क्या गया है, कि उसकी अभिव्यक्ति कहाँ ठीक नहीं है। वह इसे बखूबी जानता है।"[06] इसी लेख में समीक्षक की कमियों पर बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से उनके समीक्षक–कर्म पर टिप्पणी करते हैं– "आलोचक साहित्य का दारोगा है। माना कि दारोगापन बहुत बड़ा कर्तव्य है– साहित्य, संस्कृति, समाज, विश्व तथा ब्रह्मांड के प्रति। लेकिन मुश्किल यह है कि वह जितना ऊँचा उत्तरदायित्व सिर पर ले लेता है, अपने को उतना ही महान अनुभव करता है।"[07] यहाँ पर मुक्तिबोध ने एक समीक्षक के उत्तरदायित्व पर बड़े ही यथार्थवादी नज़रिये से अपनी बात रखते हुए यह कहा है कि एक आलोचक को अपने दारोगापन एवं महान होने की भावना का परित्याग करके ही समीक्षा–कर्म में उतरना चाहिए।

जहाँ मुक्तिबोध ने 'डबरे पर सूरज का बिंब' निबंध में आलोचक की तटस्थता और निष्पक्षता पर बात की है वहीं उन्होंने 'हाशिए पर कुछ नोट्स' लेख में समीक्षा की तटस्थता और निष्पक्षता पर बात रखते हुए यह लिखा है कि, "आलोचना हमेशा तटस्थ और निष्पक्ष नहीं हुआ करती। वह बहुधा दृष्टि की बजाय मात्र एक भावावेश होती है और दिल का कीमियागर उस भावावेश पर बनावटी आँखें जड़ देता है। उसकी कीमियागरी इतनी भयानक होती है कि वह हमारी सूरत बंदर जैसी बना देती है, जबकि हम खुद अपनी इस समझ की गिरफ़्त में रहते हैं कि हमारा चेहरा बहुत खूबसूरत है। मतलब यह कि मेरा खयाल है कि अंधी श्रद्धा से अंधी आलोचना एक भयंकर चीज है।"[08] इसी लेख में मुक्तिबोध मर्मी आलोचना पर अपनी बात रखते हुए लिखते हैं– "मर्मी आलोचना चाहे जितनी निष्पक्ष और बेलाग दिखाई दे। ऊपर चाहे जितनी कठोर और खुरदरी हो, अन्ततः उसमें एक भारी श्रद्धा होती है, और यह कि मनुष्य में सुधार किया जा सकता है, यह कि मनुष्य अपनी सीमाओं और कमज़ोरियों से ऊपर उठ सकता है; वह ऊपर उठकर उस विशाल उच्चतर क्षेत्र का भागी हो सकता है जिसे हम संस्कृति, विज्ञान, साहित्य या दर्शन अथवा अध्यात्म का क्षेत्र कहते हैं।"[09] डायरी के अन्य महत्त्वपूर्ण निबंध–लेखों में 'कुटुयान और काव्य–सत्य, 'कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारीः एक' और 'कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारीः दो' हैं। उक्त निबंध–लेखों की पृष्ठभूमि मुक्तिबोध के अन्य समीक्षा ग्रंथों जैसे 'नई कविता का आत्मसंघर्ष' और 'नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में मिलती है।

निष्कर्ष

दरअसल 'एक साहित्यिक की डायरी' सच्चे अर्थों में युग जीवन के प्रखर यथार्थ बोध को समस्त संदर्भों के साथ उद्घाटित करती है। वस्तुतः यह हमारे जीवन के समस्त ताने–बाने को अपनी परिधि में समेट लेती है साथ ही यह मुक्तिबोध की वैचारिक प्रतिभा, सूक्ष्म विश्लेषण दृष्टि, उनका सामाजिक परिवेश एवं उनकी परिस्थितियों का गहन परिज्ञान, साहित्य के प्रति उनकी आस्था और ईमानदारी, उनके मौलिक चिंतन को विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। कुल मिलाकर डॉ० शिवकुमार मिश्र के शब्दों में "समूची कृति लेखक के गहरे–प्रखर व्यंग्यों से भरी हुई है। आधुनिक युग, व्यवस्था पर चढ़े मुलम्मे, उसमें पलने वाले साहित्य तथा साहित्यकार की अपनी जीवन–स्थितियों को जितनी सफाई के साथ इस कृति में उघाड़ा गया है उतना मेरी समझ में इधर की प्रकाशित किसी वैचारिक कही जाने वाली कृति में नहीं। जीवन का सही सत्य उपलब्ध करना, यदि यह बात आधुनिक संदर्भ में किसी हिन्दी लेखक के लिए कही जा सकती है तो वह मुक्तिबोध के लिए। वे हिन्दी के प्रथम श्रेणी के व्यंग्यकार हैं, वे व्यंग्यकार जिनका व्यंग्य केवल कलई ही नहीं खोलता, केवल बनी हुई इमारत को गिराता ही नहीं, वास्तविकता के प्रति अपने समान धर्माओं को सजग कर नवनिर्माण के बीज भी डालता है, नयी और मजबूत इमारतें खड़ी भी करता है।''[10] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया से स्वतंत्र कार्यकलाप नहीं है। वह सामाजिक संदर्भों से अनिवार्य रूप से संबद्ध होता है और रचनाकार अपने अंतःकरण में स्थित भावों तथा विचारों को व्यक्तिगत भावभूमि से उपर उठाकर सर्वसामान्य से जोड़ता है। इस रूप में मुक्तिबोध की डायरी भी साहित्य के इस प्रतिमान पर खरी उतरती प्रतीत होती है।

संदर्भ सूची

1. सेवाराम त्रिपाठी (2019), मुक्तिबोध सर्जक और विचारक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–71
2. अशोक चक्रधर (2016), मुक्तिबोध की समीक्षाई, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–13
3. नामवर सिंह(2011), वाद–विवाद संवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–11.
4. गजानन माधव मुक्तिबोध (2007), एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 20–21.
5. वही, पृष्ठ संख्या–29–30
6. वही पृष्ठ संख्या– 42)
7. वही, पृष्ठ संख्या–42–43.
8. वही, पृष्ठ संख्या– 48
9. वही, पृष्ठ संख्या–50
10. पुष्पलता राठौर (1976), मुक्तिबोध के आलोचना सिद्धांत, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या–58.